कबीर का दर्शन

दिनेश कुमार उपाध्याय*

कबीर ने अपने 'निर्गुणराम' की अनुभूति की अभिव्यक्ति करते हुए जगत, जीव, मोक्ष, माया, आदि के सम्बन्ध में अनेक स्थानों पर अनेक टिप्पणियाँ की है। कबीर ने इन्हीं कथनों के आधार पर कबीर साहित्य के अध्येताओं एवं समीक्षको ने उनके दार्शनिक चिन्तन के विश्लेषण का प्रयास किया है। इतना होते हुए कबीर अपनी अखण्ड अनुभूति की अभिव्यक्त करते हुए भी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात ये है कि कबीर को किसी भी रूप में दार्शनिक नहीं माना जा सकता है। वास्तव में कबीर मूलतः एक भक्त थे। इसलिए उनके कथनों में एक दार्शनिक की तरह तर्क संगतता बौद्धिकता एवं सुंसगता नहीं मिलता है। इतना होते हुए कबीर अपनी अखण्ड अनुभूति की अभिव्यक्त करते हुए दर्शन की विभिन्न पक्षों के संदर्भ में जो कथन किये है उन्हीं के परिप्रेक्ष्य में कबीर के दर्शन का अध्ययन किया जा सकता है। कबीर के एक सुसंगत दार्शनिक न होने के कारण ही उनके दार्शनिक व्यक्तित्व को लेकर विद्वान आलोचकों के मध्य कुछ विवाद भी दिखाई देता है। जहाँ एक ओर मध्यकालीन इतिहासकार मोहसिन फासिंन ने उन्हे मुआविद (एकेश्वरवादी) कहा, वही दूसरी ओर आधुनिक विद्वान डा0 श्यामसुन्दर दास ने कबीर को अद्वैतवादी कहा है। इसी तरह आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के दार्शनिक चिन्तन पर विचार करते हुए उन्हे द्वैताद्वैत विलक्षण समतत्ववादी बताया है तो आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने उनके राम को सगुण निर्गुण से परे पूर्णतः उनके मौलिक चिन्तन की देन माना है। इस तरह यद्यपि कबीर के दार्शनिक व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विद्वान आलोचकों ने अनेक मत व्यक्त किय है। लेकिन सभी ने कबीर के दार्शनिक व्यक्तित्व को ही अपने–अपने ढ़ंग से व्याख्यायित करने का प्रयास किया है । अतः कबीर के दार्शनिक चिन्तन के सम्बन्ध में कोई निर्णय करने से पहले कबीर के कथनों को देखना आवश्यक है।

***सहायक अध्यापक रामपाल त्रिवेदी इण्टर कालेज गोसाईगंज लखनऊ**

कबीर ने जिस निर्गुण ब्रह्म को अपना उपास्य बनाया है उसके स्वरूप के संबध में उनके परस्पर विरोधी कथन मिलते हैं। एक ओर वे 'निर्गुण ब्रहम' को अत्यंत सूक्ष्म पुष्प की सुगन्ध से भी पतला कहते है तो दूसरी ओर उसके लिए कृपालु, भक्तवत्सल जैसे अत्यंत स्थूल विशेषण भी लाते हैं। इसी तरह उन्होंने 'निर्गुण राम' के लिए अलख निरंजन, अज्ञेय, निराकार, जैसे निषेधवाची विशेषण लाते है तो कृष्ण, राम गोविन्द, रहीम, रसखान आदि सगुण और सकारात्मक विशेषण भी प्रयोग करते है। इसीलिए कबीर के राम के स्वरूप के सम्बन्ध में विद्वानों के मतों में विभिन्नता दिखाई देती है। कबीर ने निर्गुण राम के निषेधवाची और सूक्ष्म स्वरूप की व्यंजना करते हुए स्पष्ट कहा है–

''निर्गुण राम जपौ रे भाई।
अविगत की गति लखा न जाइ।।''

कबीर के निर्गुण राम के सम्बन्ध में कहे गये कथनों में जो अन्तर्विरोध लक्षित होता है वह वास्तविक नही है। वास्तव में कबीर के ये कथन दृष्टिभेद के कारण परस्पर विरोधी लगते हैं। सांसारिक दृष्टि से उनके इन कथनों में विरोध दिखेगा लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से जिसे वे 'बेहद' की अवस्था कहते है उस दृष्टि से अरूप और रूप के मध्य, सूक्ष्म और स्थूल के मध्य, सकारात्मक और नकारात्मक के मध्य दिखाई देने वाला यह विरोध नहीं लक्षित होता। इसीलिए कबीर के ये कथन निरपेक्ष रूप में न लेकर सापेक्ष रूप में ही ग्रहण करना चाहिए । क्योंकि उन्होंने अपने जिस दिव्य अखण्ड आत्मानुभूति को सामान्य लौकिक भाषा में व्यक्त करना चाहा है, वह प्रायः उनके अनुभूति को पूरी तरह व्यक्त नहीं कर पाती और पुनः उसकी पूरकता में दूसरा कथन करते हैं। जिससे उनके कथनों में विरोध आ जाता है।

कबीर अपने द्वैताद्वैत विलक्षण, भावाभाव विनिर्मुक्त ब्रहम के लिए अनेक स्थानों पर जो सकारात्मक कथन करते हैं, वहां पर ब्रह्म के स्वरूप का आभाष मिलता है वे परमतत्व की एकता का प्रतिपादन करते हैं और द्वैत भावना का स्पष्ट निषेध करते है। उन्होंने ''एक नूर से सब जग उपजा'' कहकर ब्रह्म के इसी एक तत्व का प्रदर्शन किया। यही नही वेद उसके एकत्व की घोषणा अपने इस वाणी में भी करते हैं–

''हम तो एक–एक करि जाना।
दोइ कहें तिनहिं को दो जग, जे नाहिन पहिचाना''।।

इसी तरह कबीर अपने 'निर्गुण राम' की सर्व व्यापकता के सम्बन्ध में भी अनेक कथन करते हैं– उनका 'राम' घट–घट में समाया हुआ है। इसलिए वे मुल्ला व पंडित से मंदिर व मस्जिद में सीमित खुदा व ईश्वर के संबध में अनेक व्यंग्यात्मक प्रश्न पूछते हैं? उन्होंने ने ब्रह्म की सर्वव्यापकता का प्रतिवाद अपनी इस वाणी में किया है–

''लोका जानि न भूलौ भाई।
खालिक खलक खलक मे खालिक सब घट रहयो समाई''।।

कबीर का यह 'निर्गुण ब्रह्मम' इस संबध में भी विशिष्ट है कि वह शंकराचार्य के बह्म की तरह निष्क्रिय न होकर सक्रिय है। उसी ने इस संसार की रचना एक जादूगर की तरह बिना हाथ और पैर के किया है। इसीलिए वह सर्वव्यापक बह्म कबीर को अधिक स्वीकार हुआ। उन्होंने कहा है–

''आपुहिं कर्ता भया कुलाला।''

इस तरह कबीर ने अपने द्वैताद्वैत, विलक्षण, भावाभाव, विनिर्मुक्त, पारातपर ब्रह्य के सम्बन्ध में यद्यपि अनेक स्थानों पर सूक्ष्म और निषेधात्मक कथन किये हैं तथा अनेक स्थानों पर स्थूल और सकारात्मक कथन भी किये हैं। लेकिन कबीर का मुख्य बल उस ब्रह्म की अनिर्वचनीयता, अनुभवगम्यता, अद्वितीयता पर ही रहा है । इसीलिए वे सकारात्मक एवं नकारातमक, स्थूल एवं सूक्ष्म कथन करने के बाद उस ब्रह्म की अनिर्वचनीयता पर भी इस तरह बल देते हैः–

'' जस तू तस कोइ न जान
लोग कहै सब आनहिं आन।।''

अथवा

''सन्तौ धोखा कांसू कहिये।
गुण में निर्गुण निर्गुण में गुण बाट छाड़ि क्यों बहिये।।''

इसीलिए कबीर के 'निर्गुण राम' को भाव और अभाव से, द्वैत व अद्वैत से, गुण और निर्गुण से, परि व अपरि से परे केवल द्वैताद्वैत विलक्षण ,भावाभाव, विनिर्मुक्त, प्रेमपारावार से युक्त पारातपर ही माना जा सकता है। जो केवल गूंगे के गुड़ की तरह अनुभवगम्य है। इस संबध में डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन विद्वानों के मध्य अधिक स्वीकार हुआ है कि कबीर द्वैताद्वैत विलक्षण समतत्व वादी थे। इतना अवश्य है कि यह ''सम'' व ''विषम'' के निषेध में है जो ब्रह्म की सर्वव्यापकता के विरूद्ध है।

कबीर अपने दार्शनिक चिन्तन के अन्तर्गत 'निर्गुण ब्रह्म' की तरह ही माया, जीव, संसार, काल तथा मुक्ति के सम्बन्ध में भी विचार किया। माया के संबध में उनके विचार आचार्य शंकर के चिन्तन के अधिक निकटतम है। इतना होते हुए भी कबीर ने कही भी माया के संबध में शंकराचार्य की ''आवरण और 'विक्षेप' जैसी शब्दावलियों का प्रयोग नहीं किया है। माया को कबीर परमात्मा की शक्ति ही मानते हैं। लेकिन यह माया अज्ञान और अविधा का प्रतीक ही है। यही माया जीवों को अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर विभिन्न प्रकार के विषयों में फंसाये रखती है। इसीलिए वे माया के संबध में स्पष्ट कहते हैं।

''इ माया रद्युनाथ की बउरी, खेलन चली बहेरा।
चतुर चिकारे चुड़ि–चुड़ि मारे, कोई न छोड़या नेरा।।''

कबीर अपने दार्शनिक चिन्तन के अन्तर्गत जीव और आत्मा के सम्बन्ध में पर्याप्त विचार किया है। उनके अनुसार जीव ब्रह्म का ही अंश है। ब्रह्म जब मायोपहित हो जाता है तब वही 'जीव' कहा जाता है। उपाधि ही ब्रह्म और जीव के बीच का भेदक तत्व है। कबीर तो बाध्य युक्त अर्थात मायोपहित ब्रह्म से बोलना भी स्वीकार नहीं करते, और उपाधिरहित अर्थात शुद्ध आत्मा के समक्ष अपने हृदय को खोल देना चाहते है। इसीलिए उन्होंने कहा है–

''कबीर हद के जीव सो, हित करि मुखा न बोलि।
जे लागे बेहद से, ताते अन्तर खोरि।।''

कबीर ने संसार के समक्ष भी अत्यन्त महत्वपूर्ण ढ़ग से विचार किया। वास्तव में उनके अनुसार इस संसार की रचना 'निर्गुण राम' ने ही किया है और वह उसके कण–कण में विद्यमान है। अतः कबीर इस संसार मे रहते हुए उससे अत्यधिक प्रेम करते हैं उन्होंने अपने निर्गुण राम से जो निवेदन किया है वह इसी संसार में रहते हुए मुक्ति का निवेदन है। उनके अनुसार यद्यपि इस संसार में अनेक कष्ट हैं लेकिन इस संसार से बाहर वे नहीं जाना चाहते हैं– वे एक पद में इस संसार के प्रति अपना अनुराग प्रतीकात्मक रूप में इस प्रकार व्यक्त किया है।–

''कहै कबीर वर वहु दुःख सहिये।
राम प्रीति करि सगहिं रहिये।।''

कबीर के इसी तरह के कथन उनकी लोकधर्मी चेतना के भी प्रमाण हैं। इतना होते हुए भी कबीर ने जहाँ पर आध्यात्मिक दृष्टि से संसार पर विचार किया है वहाँ पर संसार के नश्वरता क्षण भंगुरता की बात भी कही है। वे उसे ''कागद

की पुड़िया' की तरह शीघ्र नष्ट हो जाने वाला और सेमर के फूल की तरह अल्पकालिक बताया है।

"यहु वैसा संसार है, जैसा सेमल फूल।
दिन दस के व्यवहार में , झूठे रंग न भूल।।"

कबीर ने अपने दार्शनिक चिन्तन के अन्तर्गत काल और मुक्ति के संबध में विचार किया है। वे काल को एक अहेरी की तरह मानते हैं। जो जीवों का वध करने के लिए उन्हें पकड़ता है। इसीलिए वे जीवात्मा को बार–बार संबोधित करते हुए जागृति करना चाहते हैं–

कबीर ने संसार के समक्ष भी अत्यंत महत्वपूर्ण ढंग से विचार किया वास्तव में उनके अनुसार इस संसार की रचना निर्गुण राम ने ही किया है और वह उसके कण–2 में विद्यमान है। अतः कबीर इस संसार में रहते हुए उससे अत्यधिक प्रेम करते है उन्होने अपने निर्गुण राम से जो निवेदन किया है वह इसी संसार में रहते हुए मुक्ति का निवेदन है। उनके अनुसार इस संसार में अनेक कष्ट हैं लेकिन जीव इस संसार से बाहर नहीं जाना चाहता है।

"सुमिरण करौ राम का काल गहे कर केस।
न जानौ कब मारिहै, कय घर कय परदेस"।।

इसी तरह कबीर ने मोक्ष के सबंध में विचार करते हुए अपने समक्ष जीवन–मृत्यु के आदर्श को रखा था। वे राम रसायन को पीकर इसी जीवन में मुक्ति पाना चाहते है, वे किसी और लोक में मुक्ति के आंकाक्षी नहीं हैं। इसलिए अपने राम से स्पष्ट कहते हैं आप मुझे तरने तारने के भ्रम में क्यों रखते है। जब आप सर्वव्यापक है, तो तार कर मुझे कहाँ ले जायेंगे। वास्तव में इस संसार में रहते हुये जीवन मृत का कबीर का यह आदर्श आधुनिक अर्थ में नश्वरता में अनश्वरता खोजने की महान चेष्टा है। इस संम्बन्ध में कबीर का कथन हैः–

"कबीर जीवन मृत ह्वै, रहे तज्यों के आस।
तब हरि सेवा आपण करै मति दुःख पावै दास।।"

कबीर के दार्शनिक विचारों के इस विश्लेषण से स्पष्ट होता है यद्यपि कबीर किसी भी रूप से शुद्ध रूप में दार्शनिक नहीं थे। लेकिन उन्होंने अपनी अखण्ड ब्रह्म की अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में ही अपने निर्गुण राम, माया, जीव, जगत, काल और मोक्ष के संबध में अनेक कथन किये हैं। इन्हीं कथनों के आधार पर कबीर का दार्शनिक व्यक्तित्व उभर कर सामने आता है। जो उनके भक्त रूप का ही एक अंश है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची –

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास संपादक डा0 नगेन्द्र, डा0 हरदयाल नवीन शाहदरा दिल्ली 2012 प्रकाशन – मयूर पेपर वैक्स नोयडा।

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी वर्ष–2003।

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास छब्न्त्ज प्रकाशन वर्ष–2003

4. कबीर वाणी : कथ्य और शिल्प लेखक डॉ0 राम किशोर शर्मा प्रकाशन वर्ष–1999 श्याम प्रकाशन संस्थान इलाहाबाद

5. 'कबीर' लेखक हजारीप्रसाद द्विवेदी राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्रकाशन वर्ष –1999

6 .हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ लेखक डॉ0 शिवकुमार शर्मा प्रकाशन वर्ष – 2011 अशोक प्रकाशन।

'